P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

स्त्री–विमर्शः भारतीय व पाश्चात्य दृष्टि

ज्योति यादव
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
व्यापार मण्डल कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हनुमानगढ़ टाउन, राजस्थान, भारत

सारांश

स्त्री विमर्श उस सत्य की चर्चा है जो समय के प्रवाह के साथ परिस्थितियों में आये बदलाव के कारण स्त्री की सोच, उसकी स्थिति, उसके स्वभाव, उसके तेवर में भी बदलाव लाती है। जब स्त्रियों को अपनी जंजीरों, बेड़ियों का आभास होगा तभी वह उसे तोड़ने का प्रयास कर पाएगी। स्त्री विमर्श का उद्देश्य स्त्री को उसकी गुलामी की स्थिति से अवगत कराना है ताकि उनमें स्वाधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत हो सके।

मुख्य शब्द : स्त्री–विमर्श, अस्मिता, व्यक्तित्व, स्वाधिकार, उत्पीड़न, अस्तित्व, स्वतंत्रता, चेतना।

प्रस्तावना

''अगर ताकत का मतलब नैतिक शक्ति से है, तो निःसंदेह महिलएं ताकत के मामले में पुरूषों से काफी आगे दिखती है''

– महात्मा गांधी

स्त्रीवादी विमर्श न मजाक है, न अपवाद। वह एक ही समय हमारे देशकाल और पूरी दुनिया से जुड़ा है। वह हमारे समय की जरूरत है। यह समग्र आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, भाषिक और सांस्कृतिक विमर्श है। इस विमर्श की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, उस सत्य की चर्चा जो समय के प्रवाह के साथ परिस्थितियों में आये बदलाव के कारण नारी की सोच, उसकी स्थिति, उसके स्वभाव, उसके तेवर में भी बदलाव लाती है। स्त्रीविमर्श, स्त्री को उसके व्यक्तित्व और अस्मिता से परिचित कराता है। अभी तक स्त्री जिस पितृक वर्चस्व को आत्मसात किये हुए, वाणीहीन, स्वत्वहीन जीवन व्यतीत करती रही है। स्त्री–विमर्श ने न केवल स्त्री के उत्पीड़न को सामने लाने का कार्य किया, बल्कि उसके मन में चेतना जाग्रत कर हजारों वर्षो से चले आ रहे पितृसतात्मक सिद्धान्तों को चुनौती दी है।

स्त्री विमर्श ने वास्तव में पितृसतात्मक सभ्यताओं व संस्कृतियों के वास्तविक चेहरे को दर्शाया है। जिसमें स्त्री को अनुकूलित करके शोषण के ढ़ांचे में ढालकर शोषित होने के लिए तैयार किया है। सिमोन स्पष्ट कहती है–''औरत को औरत होना सिखाया जाता है और बनी रहने के लिए अनुकूल किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण से समझ में आएगा कि प्रत्येक मादा जीव अनिवार्यतः एक औरत नहीं है, यदि वह औरत होना चाहती है, तो उसे और तपने की रहस्यमय वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा''[1]। स्त्री की इस दोयमहीन अवस्था का जिम्मेदार पितृसतात्मक ढ़ांचे के नियम कायदे एवं सोच ही है।

स्त्री– अस्मिता या स्त्री विमर्श की अवधारणा आधुनिक युग की देन है। यह स्त्री विमर्श का विचार मूलतः पश्चिम की देन है। इंग्लैण्ड के जॉन स्टुअर्ट मिल 1806–1873 में सर्वप्रथम स्त्री अस्मिता को नये संदर्भो में समाहित करने का प्रयास किया, समानाधिकार की बात करते हुए स्त्री के लिए मताधिकार की मांग की। पाश्चात्य जगत में नारी को पुरूष के विरोध में खड़ा होना पड़ा इसलिए वहां की लड़ाई पुरूष विरोध पर आधारित थी, लेकिन भारत में स्त्री को ऐसी लड़ाई नही लड़नी पड़ी बल्कि सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में अनेक पुरूषों ने स्त्री–विमर्श के लिए संघर्ष किया। इन्दिरा गांधी के अनुसार ''सिद्धान्ततः नारी ने समानता के अधिकार की लड़ाई जीत ली थी। आजादी के बाद उसे हमारे संविधान का अंग भी बनाया गया। किन्तु व्यावहार में स्थिति पूर्णतः भिन्न है''[2]। इन सभी प्रयासों के मूल में स्त्री अधिकारों की चर्चा न होकर स्त्री के प्रति दया, सहानुभूति का भाव था। क्योंकि एक पुरूष के लिए अपनी स्व की सत्ता के विरूद्ध स्त्री को समकक्ष स्थान देना बहुत कठिन कार्य था।

वास्तव में स्त्री–विमर्श स्त्री के अस्तित्व की जांच पड़ताल करके यह स्पष्ट करता है कि नारी को समाज में न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नहीं परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकती।

उन्हे सत्ता नहीं चाहिए, वह तो केवल अपने अस्तित्व की पहचान चाहती है, वह स्वतंत्र व्यक्ति की तरह जीना चाहती है। महादेवी वर्मा का कहना पूर्णतया सही है कि– ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय''[3]। इस प्रकार स्त्री के स्वत्व की मांग को अनेक स्त्री लेखिकाओं ने भी उठाया है क्योंकि एक स्त्री ही, स्त्री की मनोव्यथा, उसकी स्थिति को समझ सकती है। स्त्री लेखिकाओं मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान आदि लेखिकाओं ने स्त्री–विमर्श से जुड़ी सभी समस्याओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. स्त्री को उसके व्यक्तित्व और अरिमता से परिचित कराना।
2. स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
3. स्त्री को आत्मनिर्भर बनाना।
4. स्त्री को शिक्षित कर समाज में हो रहे अन्याय के विरूद्ध सक्रिय करना।
5. समाज में व्याप्त उत्पीड़न एवं शोषण को समाप्त करना।
6. स्त्री में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास करना।
7. स्त्री को समाज में वास्तविक स्थिति से अवगत कराना।

स्त्री–विमर्श से जुड़ी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि–

भारतीय सन्दर्भ में स्त्री–विमर्श

भारतीय समाज मूलतः पितृसत्तात्मक समाज है, जहां केवल पुरूष के अस्तित्व को ही महत्व दिया जाता है, स्त्री स्वतंत्रता व अस्तित्व के लिए भारतीय समाज व संस्कृति में कोई स्थान नहीं है। वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक वर्चस्व के मूल में स्त्री का शोषण निहित है, स्त्री को पराश्रित एवं पराधीन बनाकर रखने के लिए समाज में उसे शिक्षा, कला, संस्कृति और ज्ञान–विज्ञान से दूर रखा गया, ताकि वह चेतनाहीन बनी रहे तथा पुरूष की सत्ता कायम रहे क्योंकि यदि स्त्री चेतन हो गई तो पुरूष की सर्वोच्चता को खतरा बन जाएगा। इसी कारण पुरूषों ने स्त्रियों को प्रारम्भ से ही अपने ऊपर आश्रित रखा है, वह आर्थिक क्षेत्र हो या समाजिक प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नही है।

भारतीय समाज में नारी को देवी मानकर विशेष आदर दिया जाता था और माना गया कि ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता''[4]। भारतीय समाज में द्रोपदी, कुन्ती जैसी तेजस्वी स्त्रियों की उपस्थिति के बावजूद भी समाज स्त्री की स्वत्रंता का पक्षधर नहीं था। इस प्रकार स्त्रियों का दमन या अनुकूलन कहीं देवी के समान बतलाकर, महिमागान करके और कहीं उसके प्रताड़ित होने को सही ठहराकर किया गया है। तुलसीदास जैसे मानवीय दृष्टिकोण के कवि कहते है–''ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी''[5]। तुलसीदास जी कि उक्त पक्ति यह दर्शाती है कि सवर्ण पुरूष की सत्ता स्त्री, शुद्रों, गंवारों एवं पशुओं को एक समान मानती हैं। पुरूषोतम अग्रवाल जी ने कहा है– ''यह सामाजिक मान्यता जिस मर्यादा को व्यक्त कर रही है, उसका कर्ता–धर्ता सवर्ण पुरूष है''[6]। भारतीय सांस्कृतिक वर्चस्व अपने प्रभुत्व को कायम रखने के लिए स्त्री के प्रति इसी प्रकार की प्रताड़ना जरूरी समझता है।

भारतीय स्त्री, पुरूष से अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास तो कर रही है, लेकिन वह पुरूषों में अच्छा–बुरा दोनों पाती है। बुराई या उत्पीड़न को परम्परा का हिस्सा मानती है। स्त्री अपनी इस हीन दासत्व अवस्था के लिए पुरूष को दोषी नहीं मानती है। भरतीय स्त्री के लिए उसका परिवार विशेष महत्व रखता है, परिवार की कीमत पर उसे स्वतंत्रता नहीं चाहिए, वह परिवार में रहकर स्वतंत्रता को पाने का प्रयास कर रही है। आज की नारी निर्णय लेने की शक्ति और आर्थिक शक्ति प्राप्त करने में जुटी है, क्योंकि यह ही वह मंत्र है, जिससे वह स्वयं को पुरूष के समकक्ष ला सकती है।

भारतीय स्त्री का सहयोगी दृष्टिकोण उसे इस स्त्री स्वतंत्रता की लड़ाई में पुरूषों का सहयोग दिला पाया है। प्रभा खेतान लिखती हैं–''भारतीय स्त्री खुशी–खुशी समझौता कर लेती है, इसे वह जीवन जीने का एक तरीका मानती है। उसकी इसी क्षमता के करण भारत में स्त्री की हैसियत में जो परिवर्तन आया है। उसमें वह पुरूषों से सहयोग ले सकी है। समस्याओं कों केवल स्त्री का मुद्दा न मानकर उन्हें अन्य व्यापक मुद्दों के साथ जोड़ना संभव हुआ है''[7]। यही अन्तर पश्चिमी नारीवाद और भारतीय नारीवाद में है कि भारतीय स्त्री अपने हक की लड़ाई गरमजोशी से न करके नरमजोशी का रूख अपनाये हुए है।

भारतीय स्त्री मिलकर साथ रहकर अपनी पहचान को प्राप्त कर रही है। भारतीय इतिहास में पुरूष ने हमेशा स्त्री पक्ष का विरोध नहीं किया है, बल्कि वह स्त्री की प्रगति में सहायक रहा है। भारतीय स्त्री–विमर्श का उद्देश्य पुरूष से युद्ध कराना नहीं बल्कि उसे संवेदनशील बनाना रहा है।

पाश्चात्य संदर्भ में स्त्री–विमर्श

स्त्रीवादी विमर्श को दुनिया के सामने लाने में पश्चिमी देशों ने विशेष भूमिका निभाई है, या कह सकते है कि स्त्रीवाद का मूल पश्चिमी देश ही रहें हैं। पश्चिम में स्त्रीवादी विमर्शों को राजनैतिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा उजागर किया गया। सीमोन द बोउवार की महत्वपूर्ण किताब ''The second sex'' ने स्त्री–विमर्श के प्रश्नों को उठाया। इससे पहले ही वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्नों के रूप में स्त्रीवादी विचारधारा बेकन हयूम, वाल्टर, रूसो जैसे विद्वानों ने उठाया था। जॉन स्टुवर्ट मिल ने स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को समान मताधिकारों की मांग के द्वारा उठाया, वास्तव में स्त्री स्वतत्रंता की मांग का प्रारम्भ ही स्वतंत्रता के संघर्षो द्वारा ही हुआ।

पश्चिमी के विकसित राष्ट्रों में स्त्री–विमर्श को साहित्य के क्षेत्र में पाया गया, यह विश्लेषण किया गया कि किस प्रकार साहित्य मे वर्णित स्त्री–पुरूष संम्बन्धों में भी लिंग भेद की राजनीति कार्य करती है, क्योंकि पहले साहित्य में भी पुल्लिंग–विमर्श का वर्चस्व था। सीमोन द बोउवार, फरीडन, इरीगौरो, केट मिल्ट, क्रिस्तिविया आदि नारीवादी लेखिकाओं ने दस बात पर बहुत जोर दिया कि

कोई भी कलाकृति लिंग भेद के अन्तविरोधों के बिना नहीं हो सकती है।

पश्चिम में भी राजनीति के खिलाफ जो स्त्री–विमर्श उभरे उसको दबाने में वहां का पुल्लिंग विमर्श सक्रिय हो गया, लेकिन पश्चिम समाज में भी पुरूष, नारी को अपने से उच्च स्थान पर देखने में असमर्थ है। प्रभा खेतान लिखती है – ''पश्चिमी समाज में समानता का नारा बुलन्द रहा है, लेकिन उसी समाज में स्त्री–पुरूष में कदम–कदम पर भेदभावपूर्ण व्यवहार भी एक ज्वलन्त यथार्थ है''[8]। पाश्चात्य देशों में भी पुरूष सत्तात्मक समाज स्त्री को अपने अधीन देखना चाहता है। सीमोन लिखती है–'' पाश्चात्य देश के पुरूष का आदर्श वह नारी है जो मुक्त ह्दय से उसकी अधीनता स्वीकार कर ले जो उसके साथ विवाह करे उसके तर्को को स्वीकार कर ले, जो बुद्धिमता से उसका प्रतिरोध करे और अन्त में आश्वस्त होकर उसके विचारों को मान्यता दें''[9]। उन्होने स्त्री के अस्तित्व को पितृसता के कुप्रभाव से बचाने का प्रयास किया है। वह स्त्री को परम्पराओं से निकालकर आज के परिप्रेक्ष्य में स्थान देना चाहती है। सिमोन ने दर्शाया है कि पुरूष ने स्त्री का विश्लेषण स्वयं के लिए किया है। वे कहती है कि '' मानवता स्वरूप ही पुरूष है और पुरूष, औरत को औरत के लिए नहीं परिभाषित करता है बल्कि पुरूष से संबंधित ही परिभाषित करता है। वह औरत को स्वतंत्र व्यक्ति नहीं मानता। यहां तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में सोच नहीं सकती और वही बनी रह सकती है जो पुरूष उसे आदेश देता है। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरूष के लिए भोग की वस्तु है। वह पुरूष के सन्दर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है''[10]। सिमोन इस सत्य को उजागर करती है कि पुरूष ने स्त्री को अपनी सुविधानुरूप अनुकूलित किया है।

पाश्चात्य नारी–विमर्श के अन्तर्गत स्त्री अब पुरूष के बनाये बंधनों की कैद से स्वयं को आजाद करना चाहती है। वहां स्त्री का उद्देश्य पुरूष को सुधारने का कम कर रहा है, बल्कि वह पुरूष समाज के प्रति घृणित भावना रखने लगी हैं, क्योंकि पुरूष ने उसके शोषण किया है, इस कारण वे पुरूषों की व्यवस्था तथा पुरूषों को त्यागकर स्वयं अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से जीने का प्रयास कर रही है। एक ऐसा स्त्री संसार निर्मित करने का स्वप्न देख रही है, जहां पुरूष का कोई हस्तक्षेप न हो, उनका यह सपना प्रकृति के नियमों के विरूद्ध है। स्त्री का दासत्व तभी समाप्त होगा जब स्त्री पुरूष में प्राकृतिक विभाजन के बावजूद प्रेमपूर्वक रिश्ते बनेंगें।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री–विमर्श को प्रारम्भ में उजागर करने का प्रयास अवश्य ही पुरूषों ने किया था, पर पूर्ण रूप से स्त्री की स्थिति को, उसकी दुर्दशा को व्यक्त करने में उसके मानवीय अधिकारों की मांगों को उठाने में असमर्थ रहे है। जब स्त्रियों को अपनी जंजीरों, बेड़ियों का आभास होगा तभी उसे तोड़ने का प्रयास कर पाएगी। स्त्री विमर्श का उद्देश्य स्त्री को उसकी गुलामी की स्थिति से अवगत करना है, और उनमें स्वाधिकारों की मांग के प्रति चेतना जागृत करना हैं।

अंत टिप्पणी

1. *सिमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षित, पृ 23*
2. *मंजुलादास, साठोत्तर हिन्दी नाटक में त्रासद पृ 59*
3. *महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, पृ 27–28*
4. *मनुस्मृति, 3/56 ए पृ 113*
5. *तुलसीदास, रामचरित मानसः अरण्यकांड, पृ 62–3*
6. *पुरूषोतम अग्रवालः संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, पृ 68*
7. *प्रभा खेतान, प्रगतिशील वसुधा–78 जुलाई–सितम्बर, 2008 पृ 47*
8. *प्रभा खेतान, प्रगतिशील वसुधा–78 जुलाई–सितम्बर, 2008 पृ 47*
9. *सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षित, पृ 30*
10. *सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षित, पृ 30*